New Man International Journal of Multidisciplinary Studies
(UGC Approved Journal No. 45886)
ISSN: 2348-1390
Impact Factor: 4.321 (IIJIF)

20.

स्त्री का स्वरूप हिन्दी नाटकों में: एक परिचयात्मक दृष्टिकोण

डॉ. **रेनू आनन्द**
अतिथि प्रवक्ता
राजर्षि टण्डन महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तावना :–

नाटक लिखने की परंपरा का आरंभ भारतमुनि से माना जा सकता है। उनका 'नाट्यशास्त्र' यह प्रमाणित करता है कि नाटक लिखने की परंपरा पहले से ही भारत में विद्यमान थी। क्योंकि बिना किसी आधार के नाट्यशास्त्र का सृजन अंसभव है। हिन्दी नाटक की पूर्वावस्था का प्रौढ़ रूप संस्कृत के नाट्य–साहित्य में मिलता है बल्कि यह पूरे निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि भारतीय भाषाओं के प्रारम्भिक नाटकों के मूल प्रेरणा स्रोत संस्कृत के नाटक और नाट्य शास्त्र ही रहे हैं। संस्कृत नाटककारो में सबसे पहला नाम भास का मिलता है। भास ने कई नाटक लिखे जिनमें 'स्वप्नवासवदत्ता' सबसे प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार हैं, कालिदास, भवभूति, हर्ष, शूद्रक, विशाखदत्त आदि।

यों तो साहित्यिक नाटकों के रूप में हिन्दी नाटक की शुरूआत भारतेन्दु से ही होती है। लेकिन इसके पूर्व भी कुछ मौलिक और अनुदित नाटक मिलते हैं, जो ब्रजभाषा में हैं। प्राणचन्द्र का 'रामायण महानाटक' उदय कृत का 'हनुमान नाटक' और महाराज विश्वनाथ सिंह का 'आनन्दरघुनन्दन' विशेष उल्लेखनीय है। अनुदित नाटकों में यशवन्त सिंह का 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अनुवाद, नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक का अनुवाद, परवर्ती नाटककारों के प्रेरणा–स्रोत बने।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के गद्य विकास के लिए लिखा है कि ''विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।''हिन्दी को नवजागरण की चेतना बंगला नाटक और रंगमंच से प्राप्त हुई। भारतेन्दु हिन्दी नाटकों के जनक थे और उनका व्यक्तित्व भी युग–प्रवर्तक का था। परंतु भारतेन्दु ने समाज सुधार, राष्ट्रीयता, प्रेम, धर्म, नीति आदि विषयों पर नाटक लिखे।

भारतेन्दु युग :–

भारतेन्दु की 'नील देवी' राधा कृष्णदास का 'पद्मावती', राधाचरण गोस्वामी का 'सती चन्द्रावली' काशीनाथ खत्री का ''गुन्नौर की रानी'' आदि नायिका प्रधान ऐतिहासिक नाटक है, जिनमें भारतीय नारी का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु और उनके समकालीन नाटककारों ने नारी के श्रेष्ट एवं उदान्त रूप का चित्रण किया है।स्त्री अशिक्षा, बाल–विवाह, सती प्रथा और अन्य अंधकारों में घिरी स्त्री को भारतेन्दु युग में स्वतंत्र होने का पहला मौका मिला। नाटककारों ने स्त्री शिक्षा पर अधिक ज़ोर दिया साथ ही साथ स्त्री बाल–विवाह का नाटककारों ने पुरजोर असमर्थन किया। भारतेन्दु युग की स्त्री अन्य स्त्रियों के लिये प्रेरणा स्त्रोत हो गयी। भारतेन्दु के बाद नाटकों को एक नया आयाम जयशंकर प्रसाद ने दिया है।

भारतेन्दु युग में स्त्रियों के कुरीतियों, कुप्रथाओं यथा वेश्या समस्या, अनमेल विवाह आदि पर हास्य व्यंग्य पूर्ण शैली में अनेक प्रहसन लिखे गये । इन प्रहसनों में प्रमुख है– देवकी नन्दन खत्री का 'कलजुगी जनेऊ' वेश्या विलास' राधाचरण गोस्वामी कृत 'बूढ़े मुंह मुहासे' भारतेन्दु की 'अंधेर नगरी' आदि।

द्विवेदी युग :–

द्विवेदी युगीन नाटकों में प्रकृति में पूर्व की तुलना में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। नाटकों में राष्ट्रीयता चेतना और समाज सुधार का स्वर ही प्रमुख है। इस समय पारसी रंगमंच को ध्यान में रखकर कुछ रोमांचकारी नाटक भी लिखे गये ।इन नाटकों में भी स्त्री चरित्रों की उपदेयता श्रृगांरिक भावों को संप्रेषित करने तक ही रही।

जयशंकर प्रसाद के समय नाटकों के चरित्र में एक तीव्र बदलाव का संकेत मिलता है। यह समय राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना के प्रसार और प्रचार का था। भारत के अतीत की गौरव गाथा लोगों को संघर्ष की प्रेरणा दे रही थी, तो दूसरी ओर समाज में व्याप्त बुराइयों को भी खत्म करने की इच्छा लेखकों में बलवति होती जा रही थी। कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से प्रसाद के प्रमुख नाटकों में स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक ताने–बाने में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की झलक देते हैं। इन नाटकों में प्रसाद ने ऐसे नारी चरित्रों को खड़ा किया है, जो त्याग, समर्पण और बलिदान की साक्षात मूर्ति हैं। प्रसाद के स्त्री पात्रों में प्रेम, समर्पण, सेवा, त्याग की इतनी बेगवती धारा प्रवाहित होती है जिसमें स्वयं लेखक भी रचना के लिए ऊर्जा प्राप्त करता है। स्कन्दगुप्त में देवसेना का चरित्र ऐसा ही है, जो देश के उद्धार के लिए अपने प्रेम की बलि देती है और स्कन्दगुप्त के साथ देशसेवा का व्रत लेती है। वह कहती है कि ''कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। सम्राट यदि इतना भी न कर कसे तो क्या। सब क्षणिक सुखों का अन्त है। जिसमें सुखों का अन्त हो, इसलिए सुख करना ही न चाहिए। मेरे इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य! क्षमा''।[1]

जयशंकर प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' के प्राचीन कथानक में ऐतिहासिकता और कल्पना के माध्यम से आधुनिक नारी की गहन समस्या–सम्बन्ध विच्छेद और पुनर्विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। विवाह का अर्थ पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार होना ही सामाजिक रूप से स्वीकार्य था। ऐसे में प्रसाद जी ने नारी की व्यक्तिक स्वतंत्रता और उसके महत्व को मान्यता देते हुए नारी को सम्बन्ध–विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकार दिया है। ध्रुवस्वामिनी ने रामगुप्त–उसका पति उसे उपहार की वस्तु समझता है, जो आवश्यकता पड़ने पर किसी को भी दी जा सकती है, किन्तु ध्रुवस्वामिनी का नारीत्व अन्यायों का आघात सहते–सहते अंत में विस्फोट कर उठता है। प्रसाद जी यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि स्त्रियां पुरूषों की सम्पत्ति नहीं है।

प्रसाद के परवर्ती नाटककारों में हरिकृष्ण प्रेमी और लक्ष्मी नारायण मिश्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने स्त्री समस्या से जूझने का प्रयास किया है। हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक है स्वर्ण–विहान, रक्षाबन्धन, पाताल–विजय, प्रतिशोध, शिव साधना आदि। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने संयासी, मुक्ति का रहस्य, राक्षस का मंदिर, राजयोग, सिंदूर की होली आदि नाटकों की रचना की । उन्होंने नारी की स्थिति को उसकी समस्याओं को ऐतिहासिक संदर्भों में नहीं बल्कि सामाजिक संदर्भों में देखने का प्रयास किया है। उनेन्द्रनाथ अश्क ने नाटक को रोमांस के कटघरे से निकालकर आधुनिक भावबोध से जोड़ा है। उनके दो नाटक 'कैद' और 'उड़ान' स्त्री संवदेना को आधार बनाकर लिखे गये हैं। कैद में सामाजिक रूढ़ियों और यंत्रणाओं के कैद में घुटती हुई नारी का चित्रण है तो उड़ान में रूढ़ियों से बाहर निकल कर मुक्त हवा में सांस लेती हुई नारी का चित्रण है।

प्रसाद के बाद जिस नाटककार ने अपने स्त्री पात्रों के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील और सतर्क दृष्टि रखी हैं वे है मोहन राकेश। राकेश जी ने मूलतः आधुनिक संवेदनओं में आधुनिक मानव के द्वन्द्व और उसकी जटिलता को ही अपने नाटकों में चित्रित किया है। मोहन राकेश के प्रमुख नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, और आधे–अधूरे हैं, तीनों ही नाटकों में नारी संवेदना, उसकी स्वतंत्रता और उसके महत्व की अनेक स्थितियां दिखायी गयी है। प्रेम और विवाह के नये अर्थ पुरूष और स्त्री के लिए प्रेम के अलग–अलग अर्थ क्या है? दाम्पत्य संबंधों में अकेलापन, उब और घुटन उनके नाटकों में मुख्य रूप से चित्रित हुई है।'आषाढ़ का एक दिन' मुख्य रूप से कालिदास पर आाधारित है लेकिन मल्लिका का त्याग, समर्पण, सरलता उसे मल्लिका पर आधारित नाटक बना देता है। मल्लिका अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की

घोषणा करती हुई कहती है कि ''क्या अधिकार है उन्हें कुछ भी कहने का? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है।''[2]

आर्थिक दारिद्रय और कालिदास की उपेक्षा सह कर भी उसके मन में अपने किये के प्रति कोई पश्चाताप नहीं है। वह हर प्रकार के दुख दर्द को झेलकर भी कालिदास के उत्कर्ष, यश और विजय में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है। ''मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही परंतु तुम जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूं, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।''[3] मल्लिका उनकी उपेक्षा सहकर भी समय और परिस्थितियों के झंझावतों से अपने को बचाने का प्रयास करती नज़र आती है।

'आधे अधूरे' नाटक में समाज की विसंगतियों से सीधे जूझने का प्रयास है। वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा–अधूरा रहकर अपने–अपने ढंग का संत्रास भोगता है। यह नाटक स्त्री और पुरूष के बीच लगाव और तनाव का दस्तावेज है। डॉ. मीना पिपलापुरे के अनुसार ''राकेश की नारियों के पास अपना व्यक्तित्व है और वे अपनी अलग पहचान बनाती हैं जिससे ज़ाहिर है कि राकेश ने उन्हें संलग्नता और सहानुभूति दी है। उन्हें अन्ततः संघर्ष से गुज़ारते हुए भी साथ है और यह राकेश की संवेदनशीलता का विशिष्ट पक्ष है।''[4]

इन विशिष्ट नाटककारों के अलावा कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, मन्जू भण्डारी, नरेश मेहता आदि ने भी अपने नाटकों में आधुनिक जीवन के दबाव में टूटते परिवार और वैवाहिक संबंधों ,अकेलापन, संत्रास, अनैतिक यौन संबंध आदि विषयों को अपने नाटक का विषय बनाया है।

निष्कर्ष :–

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में स्त्री का अदर्शवादी रूप प्रस्तुत किया है जो स्वतंत्रता का पुरजोर समर्थन तो करती ही है। साथ ही साथ वह राष्ट्रीयता और व्यक्तित्व स्वातंन्र्य को भी महत्व देती है। जबकि मोहन राकेश ने स्त्री को अधिक शक्तिशाली स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है। वह अकेले रह कर भी सशक्त है साथ ही साथ आधुनिकता के दौर में स्त्री के जो संघर्ष है उसे भी यथार्थ रूप में राकेश जी ने प्रस्तुत किया है। नाटकों में स्त्री की भूमिका आंरभ से ही सोचनीय थी। पहले के नाटकों में स्त्री को सौंदर्य की मूर्ति के रूप में एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया और साथ ही साथ उसके जीवन मूल्यों को अधिक महत्व दिया। सच कहा जाये तो भारतेंदु युग स्त्री के स्वरूप को बदलने का युग है। स्त्री शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य आंदोलन तथा नवीन जीवन दर्शन के फलस्वरूप आधुनिक नारी का ऐसा रूप सामने आया, जिससे हमारा समाज अब तक अपरिचित था।

संदर्भ :–

1. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, पृ0– 137
2. आषाढ़ का एक दिन, मोहन रोकश पृ0–12
3. आषाढ़ का एक दिन, मोहन रोकश पृ0–93
4. मोहन रोकश का नारी संसार, डॉ. श्रीमती मीना पिपलापुरे, भूमिका से।

❑❑❑